International Journal of Applied Research 2014; 1(1): 315-318

ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 3.4
IJAR 2014; 1(1): 315-318
www.allresearchjournal.com
Received: 27-09-2014
Accepted: 29-11-2014

कुमारी सुधा देवी
शोधार्थी, दर्शनशास्त्र विभाग,
मगध विश्वविद्यालय, बोधगया,
बिहार, भारत

Corresponding Author:
कुमारी सुधा देवी
शोधार्थी, दर्शनशास्त्र विभाग,
मगध विश्वविद्यालय, बोधगया,
बिहार, भारत

स्वामी विवेकानन्द के दर्शन में विश्व कल्याण की दृष्टि

कुमारी सुधा देवी

प्रस्तावना

जब भी मानवता रूग्न हुई है, धर्म भग्न हुआ है, बिखरा एवं क्षीण हुआ है, मानवता को पुनर्जीवित करने एवं धर्म की रक्षा हेतु सत्यात्माओं का आरंभ से ही यहां अवतरण हुआ है। स्वामी विवेकानन्द सत्यात्माओं की धारा पर अवतरण श्रृंखला की ऐसे ही विलक्षण विभूति हैं। विवेकानन्द जिनके विषय में भगिनी क्रिस्तिन की उद्भावना है कि ये किसी दूसरे ग्रह से, किसी दूसरे मंडल से आये हुए वे पर्यटक हैं जिनके द्वारा उस दूरवर्ति क्षेत्र की महिमा, शक्ति एवं दीप्ति के अंश इस संसार में लाए गये हैं। यद्यपि इनका विचरण मनुष्यों के बीच रहा किन्तु निश्चयतः वे इस मर्त्यभूमि के नहीं थे। वे तो एक तीर्थयात्री थे, एक अजनवी, जिनका यहाँ ठकराव केवल एक रात के लिए हुआ निश्चयतः यह महान् आत्मा सांसारिक स्तर के नहीं वरन् दूसरे स्तर के थे वे एक भास्वर सत्ता थे, जो एक सुनिश्चित प्रयोजन के लिए दूसरे एक उच्चतर मंडल से इस मत्त्यभूमि पर अवतरित हुए।

12 जनवरी 1863 को कलकत्ता के एक अति संभ्रान्त एवं वैभव समपन्न परिवार में जन्म लेकर मात्र 39 वर्षों के अल्प जीवन के बीच संसार को अपनी उपिस्थति के मधु सुगन्ध से सुवासित करने वाले स्वामी विवेकानन्द अपने युग के युगान्तकारी व्यक्ति थे भारतीय संस्कृति, विज्ञान एवं सामाजिक-धार्मिक मूल्यों के आधार पर उन्होनें जिस दर्शन का सर्जन किया, वह वास्तव में संपूर्ण मानवता की अनुपम धरोहर बन गयी है। सत्य यह है कि विवेकानन्द का आविर्भाव जिस युग में हुआ वह जबर्दस्त बौद्धिक उफान, नैतिक अध्यवस्था एवं बिखरते हुए मानदण्डों का युग था। लोग भ्रमित थे कि उनकी दिशा किस तरफ है। वे विज्ञान की भावना से अनुप्राणित थे तथा सोचते थे कि विज्ञान की सहायता से मनुष्य सत्य का दर्शन कर सकते थे। जबकि वस्तुस्थिति ठीक इसके विपरीत थी। सत्य से किनारा काटा जा रहा था। ऐसे ही विघटन के युग में, आरंभ में विज्ञान के रंग रंगे विवेकानन्द ने जब श्री रामकृष्ण परमहंस से यह प्रश्न पूछा कि क्या आपने ईश्वर को देखा है, तो प्राप्त उत्तर से इन्हें अपने जीवन को निर्धारित करने की दिशा प्राप्त हुई। श्री रामकृष्ण परमहंस के सान्निध्य ने इन्हें अपने अन्तःस्थ में विधमान और आध्यात्मिकता की झलक दिखाई जिसे कालान्तर में अपनी साधना, तप और समाधि के उत्कृष्ट साधनों से दैदिप्यमान बनाकर इस महान् संत ने इसके प्रकाश से सम्पूर्ण मानवता को आलेकित कर दिया। 11 सितम्बर 1893 ई. को 30 वर्ष के इस तरूण ने पश्चिमी मंच से वेदान्त के सर्वोच्च सत्यों की घोषणा के द्वारा एक सच्चे विश्व बन्धुत्व की लहर उत्पन्न कर दी। एक उदात्त, दुर्लभ एवं व्यापक मानवतावादी विचार के साथ अपने शक्तिशाली सम्मोहन में पूरे संसार को आकृष्ट किया। पश्चिमी के समाज में अपने प्रवेश से वहां भारत की समस्याओं के प्रति सहानुभूति एवं

समझ के सिंहतार को खोला तथा अपने देश में नवीन आत्म गौरव एवं विकास के एक नये युग का सूत्रपात किया। डा० एम० कुमारी के शब्दों में विवेकानन्द अक्षरशः भारत को उसके एकाकीपन से बाहर लाए। उन्होनें भारत की नाव को, जिसकी पेंदी में छेद हो गये थे, सुधारा और अन्तर्राष्ट्रीय जीवनधारा में उसे पुनः प्रतिष्ठित किया। वे सनातन धर्म को वैज्ञानिक तार्किकता के तेज प्रकाश के सम्मुख लाए और उसे आधुनिकता की चकाचौंध के ठीक सामने यह प्रकट करने के लिए प्रस्तुत किया कि भारत का व्यक्तित्व, जैसा कि चित्रित किया जाता था, किसी झिलमिल आवरण से आवृत नहीं जो तेज प्रकाश और गर्मी से पिघल जाएगा, बल्कि वह तो वास्तविक है, सत्य श्रेष्ठता और स्थायी वैभव का संयोग 4 जुलाई 1902 के संध्यकाल में सिंह के साहस से युक्त किन्तु फुलों की पंखुड़ी से कोमल हृदय वाले मानवता के उपासक इस महिमावान् देशमक्त सन्यासी ने अपनी अन्तिम सासे ली। मृत्यु को तो वे प्राप्त हुए किन्तु अपनी चिर अमरता का प्रत्येक व्यक्ति का आश्वासन दिलाते रहने के लिए उनके ये शब्द स्थायी एवं चिरव्याप्त हैं जो उन्होनें मिस्टर एरिक हैमण्ड को लंदन में कहे थे: "संभवतः यह अच्छा होगा कि मैं अपने इस शरीर से बाहर निकल आउं और इसे जीर्ण वस्त्र की भांति उतार फेंकू। किन्तु फिर भी मैं कार्य करते रहने से नहीं रूकूँगा। मानव समाज में तब तक सर्वत्र प्रेरणा प्रदान करता रहूँगा, जब तक संसार यह भाव आत्मसात् न कर ले कि वह ईश्वर के साथ एक है।

स्वामी विवेकानन्द के ही युग में भारत में मानववादी दर्शन के प्रणयन के लिए समुचित दार्शनिक पारिस्थिति को निर्मित करने में जिस अन्य महात्मा आत्मा ने प्रभावकारी भूमिका का निर्वाह किया, थे वे थे युगद्रष्टा, मकान संत विचारक महर्षि अरविन्द। परिचय प्राप्त करने के संदर्भ में, उनके संबंध में डॉ० राधाकृष्णन् का निम्न अभिमत हमारा पथ प्रदर्शक हो सकता है।

"दर्शन के मूल भूत तत्वों तक उनकी पहुँच, आन्तरिक जीवन के निर्माण में उनका निष्ठावान् प्रयास तथा मानवता एवं उनके भविष्य के प्रति उनका अगाध प्रेम उनकी वृतियों को वह गहराई और सम्पूर्णता प्रदान करता है, जो अन्यत्र दुलर्भ है।

स्वामी विवेकानन्द के मानववादी दर्शन की पृष्ठभूमि को प्रकाश में लाने के क्रम में हमें इन मूल संघटकों को स्पष्ट करना होगा। व्यापक दृष्टिकोण के आधार पर समकालीन भारतीय दर्शन को मोटे तौर पर दो युगों में बाँटा गया है- एक तो स्वातंत्र्यपूर्व युग तथा दूसरा स्वातंत्रयोत्तर युग। काल की सीमा रेखा को निर्धारण में सन् 1828 ई0 से लेकर सन् 1952 ई० तक का युग स्वातंत्र्यपूर्व युग माना गया है, जबकि सन् 1952 ई0 से लेकर आज तक का युग स्वातंत्र्योत्तर युगा विशेष काल सीमा के अन्तर्गत क्रमिक विधान के अधीन सन् 1890 ई0 से लेकर सन् 1952 ई0 तक का युग स्वामी विवेकानन्द का युग माना गया है यह काल क्रमिक विधान के अन्तर्गत स्वामी विवेकानन्द स्वातंत्र्यपूर्व युग के उदात्त मानववादी चेतना के अभिधारक के रूप में प्रस्तुत हुए है, और सत्य भी यही है कि उनकी उदात्त चेतना से अनुप्रणित इनके मानववादी दर्शन को पृष्ठभूमि भी प्रदान किया है - स्वातंत्रयपूर्व भारत एवं तत्कालीन विश्व की परिस्थितियों ने।

मानव सभ्यता के इतिहास में विज्ञान की अनूठी उपलब्धियों एवं प्राद्योगिकी के अभूतपूर्व विकास के कारण एक तरफ जहाँ इस युग का विशेष महत्व है, वहीं दूसरी तरफ यह भी सत्य है कि इस युग की विघटनकारी प्रवृत्तियों के कारण यह मानव-पतन के युग के रूप में भी माना गया है। वास्तव में स्वामी विवेकानन्द का युग निराशा और आशा के बीच झूलता एक संक्रमणकालीन युग था। एकतरफ जहाँ देश अंग्रेजी साम्राज्यवाद की दासता की जंजीर में जकड़ा सिसक रहा था, वहीं दूसरी तरफ राष्ट्रवाद और साम्राज्यवाद के खूनी पंजे समस्त विश्व की शांति और चैन को नष्ट करने के निरन्तर फैलते जा रहे थे युग में व्याप्त दुर्दमणीय शक्ति -लोलुपता, विश्व- चेतना को अपना ग्रास न बना ले... सार संसार इस डर से सहमा खड़ा था। जहाँ एक तरफ शक्ति-उन्माद ने विश्व क वैमनस्य एवं विस्फोट के काले गहने बादलों से आच्छादित कर रहा था, वही दूस- तरफ उसने जड़वादी, भोगवादी एवं राष्ट्रवादी दृष्टकोणों के द्वारा विकृता, अमानुषीयत एवं विध्वसंता के ऐसे कैन्सर को भी जन्म दे रखा था, जिसके प्राणघातक की मानवता के समस्त सार्थक मूल्यों को धीरे-धीरे चाटते चले जा रहे थे मानव विनाश की ओर उन्मुख थी। सर्वत्र अराजकता, अशान्ति, अव्यवस्था अनी अत्याचार एवं कुसाम्राज्य का शोषण व्याप्त था। युग की विध्वसंकारी स्थिति ममार्हता इसी युग के निष्पात् दार्शनिक राधाकृष्ण ने युग की मर्मान्तक स्थिति निरूपण में स्पष्टतः कहा है ...हम मानव जाति के सबसे अधिक अवसाद समय में रह रहे हैं। मानव इतिहास के अन्य किसी भी समय में लोगों के सिर पर इतना बड़ा बोझ नहीं था, या वे इतने यंत्रणापूर्ण अत्याचारों और मनोवेदनाओं के कष्ट नहीं पा रहे थे। हम ऐसे संसार में जी रहे हैं, जिसका विषाद सर्वव्यापी है। परम्पराएँ, संयम और स्थापित कानून एवं व्यवस्था आश्चर्यजनक रूप से शिथिल हो गई है। जो विचार कल तक सामाजिक भद्रता और न्याय में अवच्छिद्य समझे जाते थे, और जो शताब्दियों से लोगों के आचरण का निर्देशन और अनुशासन में समर्थ रहे थे, आज बह गए हैं। संसार गलत फहमियों, कटुताओं और संघर्षों में

विदीर्ण हो गया है। सारा वातावरण सन्देह, अनिश्चितता और भविष्य के आव्यांतिक भय से भरा है। "राधा कृष्णन् के इस कथन से स्पष्ट है कि इस युग में विधमान मानववादी चेतना से अनुप्राणित प्रज्ञावाणों की वेदना केवल एक गुलाम भारतवासी की वेदना नहीं थी, अर्थात् वे केवल सदियों की दासता से निष्प्राण हुये भारत की दुःवस्था से व्यथित नहीं थे, बल्कि उनकी वेदान तो समस्त संसार की वेदना थी। भारतवासी होने के कारण भारत की दुःवस्था पर व्यथित होना न केवल राधाकृष्णन वरन् स्वामी विवेकान्द के लिए भी स्वाभाविक था, लेकिन सत्य यह है कि इन दोनों ने कभी भी अपनी दृष्टि को केवल भारत तक ही केन्द्रित नहीं किया। यही कारण है कि स्वामी विवेकानन्द ने एक तरफ जहाँ अंग्रेजों के बर्बर दमन की असहनीय वेदना को अपने वक्षस्थल पर झेला, वहीं बढ़ते साम्राज्यवाद के फलस्वरूप हुए द्वितीय विश्वयुद्ध में नागासाकी और हिरोशिमा पर गिरये गए अणु बम से हुए भीषण नर-संहार की थराती मानवता की असहयनीय वेदना को भी श्री अरविन्द अनुभूत किया है। प्रासंगिक संदर्भ में श्री अरविन्द की यह अनुभूति इनके निम्न कथनों में स्पष्टतः अभिव्यक्त है... "आज हम सिर्फ अपने देश में ही नहीं वरन विश्व के इतिहास के एक कठिन दौर से गुजर रहे हैं। वास्तव में हम विनाश के कगार पर खड़े है। मूल्य बिखर रहे हैं, आदर्शों का अभाव है, सभी तरह पलायन की वृत्ति दिखाई पड़ रही है। लोग मानसिक दुर्बलता के शिकार हो रहे हैं और जैसे ही लोगों की इन बातों पर नजर जाती है, उनमें निराशा, कुंठा एवं लाचारी की भावनाएँ घर करने लग जाती है मनुष्य की आत्मा में विश्वास का ऐसा अभाव मानव-सम्मान का विरोधी है मानव- प्रकृति का अपमान है।"

तत्कालीन युग के इस विषाद के सृजन में युग की राजनीतिक, सामाजिक आर्थिक एवं धार्मिक परिस्थितियाँ विशिष्ट कारण तत्व बनी है। इन्ही परिस्थितियों ने स्वामी विवेकानन्द की मानववादी चेतना के उद्बोधन की पृष्ठभूमि भी प्रदान की है।

स्वामी विवेकानन्द ने अपने युग में विध्वंसकारी रूप में प्रभावी राष्ट्रवाद के द्वारा दी गयी वेदना को अनुभूत किया था। इसी अनुभूति ने उन्हें राष्ट्रवाद को मानवता के लिए एक घातक बिमारी मानने को बाध्य किया, जो इनके विचार में युद्ध को भड़काती है, विश्व-परिवार को भ्रष्ट बनाती है तथा उनके आपसी संबंधों में जहर घोलती है।" स्वामी विवेकानन्द की दृष्टि में यह वास्तव में स्वार्थ का सामूहिक रूप है, यहाँ प्रत्येक राष्ट्र अपने आपको ईश्वर का प्रिय भविष्य का निर्माता एवं मानव-जाति का शिक्षक बतलाता है। प्रत्येक राष्ट्र अपनी संस्कृति एवं जीवन-पद्धति को बनाए रखने का औचित्य सिद्ध करता है और अचेतन भाव से यदि चेतन भाव नहीं हो तो, अपनी भावनाओं की रक्षा के लिए तर्क गढ़ता है तथा उन सभी के विरुद्ध आक्रामक रवैया अपना लेता है जो उसकी पद्धति को अस्वीकार करते हैं एवं किसी दूसरे जीवन-पद्धति को अपनाने के लिए प्रतिबद्ध होते हैं।"

इस आक्रमक रवैये की परिणति होती है... निर्दयता की ऐसी संस्कारिताओं का प्रयोग जिसका स्वामी विवेकानन्द के विचार में वर्णन करना कठिन है। वस्तुतः राष्ट्रवाद के कुप्रभाव से युद्ध इस युग की त्रासदी बन गयी थी। दुर्भाग्य की बात यह थी कि द्वितीय विश्व युद्ध की विनाशमयी लीला के बाद भी युद्ध का सिलसिला समाप्त नहीं हुआ।

युग की इस विस्फोट राजनीतिक परिस्थिति ने स्वामी विवेकानन्द को एक ऐसे राजनीति दर्शन के प्रणयन की प्रेरणा प्रदान की, जो मानव को गैस-चैम्बरों और अणु बमों के विनाशमयी प्रभाव से सिसकती दुनियाँ से बाहर निकालने का रास्ता प्रदान करें। उनका मानववादी दर्शन इसी का मूर्त रूप है।

स्वामी विवेकानन्द के युग की न केवल राजनीति दशा वरन् सामाजिक दशा भी सोचनीय थी। सारे संसार में अशांति, सामाजिक विश्रृंखलता, अव्यवस्था एवं प्रवंचना का नंगा नृत्य हो रहा था। समाज में सर्वत्र टूटना व्याप्त थी। सारा संसार जाति, नस्ल, धर्म और वर्ण से विखंडित हो विलुप्त हो रही मानवता पर अट्हास कर रहा था। यदि अफ्रिका में गोरे और काले का भेद उग्रता पर था तो देश के अन्दर साम्प्रदायिक विखंडन एवं जाति-भेद एवं अपने पूरे उफान पर था। सदियों की राजनीतिक पराधीनता भारतीय समाज के रूप में विकृत कर चुका था। राजनीतिक, आर्थिक एवं सामाजिक उत्पीड़न एवं साथ ही आत्म-बोध के अभाव में भारतवासियों में व्यापक हीन भावना को जागृत कर दिया था हिन्दू समाज की दशा तो अत्यन्त ही दयनीय थी। पहले मुस्लिम तथा फिर बाद में ब्रिटिश शासन से उत्पन्न गुलामी के भाव ने न केवल हिन्दू समाज को विकृत बना दिया था वरन हिन्दूओं के धार्मिक, नैतिक एवं आध्यात्मिक मानदंडों को भी असह्य एवं अपूरनीय क्षति पहुँचायी थी धर्म, समाज और सामान्य जन-विज्ञान के क्षेत्र में पराधीनता की काली घटनाओं में जिन आपत्ति विपत्ति और अभिशापों की उपल वृष्टि की, उसमें जनता के दुःख दर्द बढ़े धर्म के नाम पर धोखा कर्मकाण्ड, नैतिकता के नाम पर मिथ्या एवं मूढ़ विश्वासों के प्रचलन तथा सुसंगत सामाजिक विधान के स्थान पर वर्जनाएँ एवं नियंत्रण इस युग की त्रासदी था लोगों का चिन्तन इतना विकारग्रस्त एवं दूषित हो गया था कि वैचारिक उदारता के स्थान पर कट्टर संकीर्णता एवं अनुदार भावों का ही प्रसार हुआ फलतः समाज में बाल-विवाह का प्रचलन, स्त्रियों की शिक्षा पर रोक, उनकी स्वतंत्रता का

अपहरण, विधवा - विवाह का प्रचलन, स्त्रियों की शिक्षा पर रोक, उसकी स्वतंत्रता का अपहरण, विधवा विवाह का प्रतिबंध, बहुविवाह की स्वीकृति, शासकीय प्रतिबंध के बावजूद सती प्रथा को प्रोत्साहन तथा दहेज प्रथा जैसा सामाजिक कुरीतियों के माध्यम नारी के प्रति असीम अत्याचारों का विधान स्वीकृत हुआ। जाति-भेद, वर्ण-भेद को विश्रृंखलित कर दिया, जिसकी आवश्यक परिणत्ति सहस्र जातियों एवं उपजातियों की संकीर्ण कारा में बांधकर समाज के छिन्न-भिन्न हो जाने में फलित हुई। इस युग में वर्ण-भेद अपनी उग्रता में स्थापित था, दलित वर्ग असीम अत्याचार से पीड़ित थे उन्हें घृणित काम सौंपे गये थे उनकी न तो कोई सामाजिक प्रतिष्ठा थी और न ही समाज में उनका कोई अस्तित्व माना जाता था। उच्च वर्गीय जातियों को उनके साथ खाना-पीना, उठना-बैठना, स्पर्श करना तक निषिद्ध था। देव-दर्शन उनके लिए वर्जित था। निश्चियतः इस वर्ण-भेद का एक ऐतिहासिक आधार था, लेकिन काल के विकास के अन्तर्गत इस युग में यह एक ऐसे सामाजिक विकृति के रूप में सामने आया, जिसने सम्पूर्ण समाज को संकीर्ण रूढिवादिता के शिकंजे में कस दिया। यहाँ पं0 जवाहर लाल नेहरू का यह विचार प्रासंगिक है कि "वह (वर्ण व्यवस्था) एक खास युग की परिस्थितियों में बनी थी, लेकिन दुर्भाग्यवश इसका विकास कुछ ऐसा हुआ कि यह उसी समाज के लिए और इन्सानी दिमाग के लिए कैद घर बन बनी।"

स्वामी विवेकानन्द अपने युग की इस त्रासदी से भली-भाँति परिचित थे युग की इस त्रासदी ने उन्हें उनके मानववादी दर्शन के लिए पृष्ठभूमि प्रदान की। समस्त मनुष्यों को एक मानने की उनकी अन्तः चेतना ने उन्हें वर्ण एवं जाति-भेद के प्रति तीखी प्रतिक्रिया व्यक्त करने के लिए किया, जिसका मूक्तरूप हमें स्वामी विवेकानन्द के इस कथन में प्राप्त होता है कि "जाति-भेद एक सामाजिक अभिशाप है, और साथ ही वह विश्व-भ्रातृत्व के सिद्धान्त के नितांत प्रतिकूल है।" इनका मानना है कि जाति-व्यवस्था के ऐतिहासिक विकास का आधार चाहे जो भी रहा है, उस प्राचीन उपनिषद् के महत् आदर्श को, जो घोषित करता है कि मानव-प्राणी आत्मा का एक स्फूल्लिंग ईश्वर की एक किरण है, अपमानित किया है इस पर भी हमनें लोगों को अलग करने वाली प्रस्तर भित्तियों का निर्माण किया है तथा किसी को उच्च और दूसरों को निम्न बताया है। हमने लोगों के मन को पंगु एवं उनकी जीवन को संकुचित बना दिया। हमारी समाज की वर्जनाएँ एवं निषेध मानवात्मा का क्षरण करते और उसे तोड़ देते हैं। इस कार्य में हमारी रूढ़िवादिता इसको प्रोत्साहित करती है क्योंकि हम इसे गहन प्रज्ञा की अभिव्यक्ति कह कर अपने अंधविश्वासों का समर्थन करते हैं।

अब तक के विवचेन से यह स्पष्ट है कि स्वामी विवेकानन्द का युग न केवल भारत के लिए वरन् सारे संसार के लिए ही मानव-मूल्यों के विघटन का युग सिद्ध हो रहा था। मानवता अवनति की ओर अग्रसर थी। लेकिन एक सुखद घटना यह थी कि विघटन की इस प्रक्रिया के प्रतिवाद में साथ ही साथ, सोयी मानव -चेतना के द्वारा करवट लेने का कार्य भी इसी युग में शुरू हो चुका था। इसमें महत्वपूर्ण भूमिका निभायी दर्शन ने। वस्तुतः निसंदेह कहा जा सकता है, स्वामी विवेकानन्द का सम्पूर्ण दर्शन ही इस मानववादी चेतना और विश्व कल्याण भाव से अभिरंजित है।

संदर्भ

1. स्वामी विवेकानन्द साहित्य संचयन, रामकृष्ण मठ, नागपुर, एकादश संस्करण, 2000, पृ0 7.
2. विवेकानन्द हमारी बीच, डा0 एम0 लक्ष्मी कुमारी, विवेकानन्द केन्द्र, कन्या कुमारी, 1990, पृष्ठ 11-12
3. धर्म और समाज एस० राधाकृष्णन (अनु०) विराज, राजपाल एन्डसन्स, दिल्ली,1975, पृ0 11
4. द रिलिजन वी नीड, एस0 राधाकृष्णन, पृ०31
5. "आधुनिक युग में धर्म", एस0 राधाकृष्णन, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1968, पृ० 28-29
6. विवेकानन्द, स्वामी विवेकानन्द साहित्य, खण्ड-7. पृष्ठ 96.
7. पावेल, सी० एफ डाइलेमा ऑफ एटम' (संक०) साइन्स एण्ड क्लचर, अगस्त 1955
8. विवेकानद, स्वामी विवेकानन्द साहित्य खण्ड 2. पृष्ठ 32